Impact Factor (QJIF): 8.38 E-ISSN: 2583-7206, P-ISSN: 3049-2432

International Journal of All Subject Research

Received: 03/March/2026 **IJASR:** 2026; 5(3):58-60 **Accepted:** 11/April/2026

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शिव की अवधारणा

*[1]डॉ. परमानन्द

*[1]प्रवक्ता संस्कृत, राजकीय इण्टर कालेज गब्बापुर सिरसिया श्रावस्ती, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शिव अपने क्रिया स्वातंत्र्य के माध्यम से जगत की अभिव्यक्ति करता है।शिव की यह विशेषता है कि वह एक साथ पर और अपर दोनों है जो उसका स्वरूप है। शिव चिंमात्र नहीं चेतन है। चैतन्य शिव का स्वभाव है। इसी चैतन्य को चित, संवित, स्फुरत्ता, सार, शक्ति स्वातंत्र अथवा शिव का ऐश्वर्य कहा जाता है। वह सत अथवा अस्ति मात्र नहीं है अपितु उसमें अपने अस्तित्व के प्रकाशन की क्षमता भी विद्यमान है। अतः अस्तित्व–भांति, प्रकाश–विमर्श यह दो भिन्न–भिन्न तत्व न होकर दोनों सामरस्य है। पूर्ण सामरस्य और समन्वय का यही सिद्धांत अद्वयवाद है। शिव तत्व ही सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह रूप पांच कृत्यौ को निरंतर करता रहता है।

मुख्य शब्दः विश्वातीत, लीलाविलास, ऐश्वर्य, परासंवित, प्रमाता,स्फुरत्ता, स्वातंत्रता आदि।

प्रस्तावना

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शिव अपने क्रिया स्वातंत्र्य के माध्यम से जगत् की अभिव्यक्ति करता हैं। शिव की यह विशेषता है कि वह एक साथ पर और अपर दोनों है जो उसका स्वरूप है। वह इसलिए है कि विश्व से असमबद्ध है और वह अपर इसलिए है कि स्वतंत्र एवं निर्पेक्ष है। उपनिषद् भी शिव के इन दोनों रूपों से सहमत है, परन्तु वहां पर भी परब्रह्म को अधिक महत्त्व दिया गया है और उसकी तुलना में अपर ब्रह्म को कम। इस असमानता को आगम शास्त्र में समान समझते हुए ही परमशिव को विश्वोतीर्थ और विश्व में दोनों माना जाता है यहां पर भी कहीं कहीं शिवमयता पर अधिक महत्त्व दिया गया है परन्तु इसका एक मात्र कारण है कि परमशिव को जगत् से असम्बद्ध एवं एकांकी न मान लिया जाये। [1]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन इस जगत् को शिव के द्वारा आभासित मानते हैं। वे इस जगत् की सृष्टि के लिए एकमात्र तत्त्व शिव को ही स्वीकार करते हैं। यहां पर शिव को ही जगत् का उपादान निमित्त कारण माना गया है। यह अपने क्रिया स्वातंत्र्य से ही जगत् की उत्पत्ति करता है उसका यह स्वरूप है कि वह एक साथ पर और अन्तर्यामी दोनों है। इसका यह दो रूप होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यदि वह केवल पर होगा तो विश्वातीत होगा और यदि मात्र अन्तर्यामी रहेगा तो उसके स्वातंत्र्य एवं निर्पेक्षता में व्यवधान उत्पन्न होगा। इसके अन्तर्गत यह दोनों स्वरूपों का एक साथ होना इसका वास्तविक स्वरूप लक्षण है। [2] परन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अद्वैतवाद में शिव की सृष्टि भी है और सृष्ट्येतर किसी पदार्थ की यदि कल्पना की जा सकती है तो वह भी शिव ही है। शिव से माया प्रकृति आदि समस्त पदार्थ उत्पन्न हैं। यहां शिव सांख्य के पुरुष की तरह केवल चैतन्य ही नहीं हैं यह शक्ति है यह ज्ञान ही नहीं क्रिया भी है। इसे शिव शक्ति सामरस्य रूप से समझा जाता है सृष्टि शिव का ही लीला–विलास स्वातंत्र्य प्रकाशन आनंद आप्लावन या शिव की क्रियारूपता है। शिव क्रियाशील है और उसकी असंगता को भंग कर सके। माया स्वयं शिव का ही उपादान है अतः यह भी उसकी अससंगता को भंग नही कर सकती। [3]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में परमार्थिक तत्त्व शिव है। ये चिन्मात्र नहीं, चेतन है। [4] चैतन्य अभिच्छिन्न स्वभाव है। इसी चैतन्य को संवित, चित्त, स्फूर्ति, सार शक्ति स्वातंत्र्य या शिव का ऐश्वर्य कहा जाता है। वह सत् या अस्ति मात्र नहीं है, अपितु उसमें अपने अस्तित्व के प्रकाशन की क्षमता भी विद्यमान है। [5] अतः अस्ति–अस्तिता (भांति) प्रकाश–विमर्श ये दो अलग–अलग–अलग तत्त्व न होकर

***Corresponding Author:** डॉ. परमानन्द

दोनों सामरस्य हैं। [6] पूर्ण सामरस्य और समन्वय का यही सिद्धांत अद्वैतवाद है। [7] यह अद्वैतत्त्व सृष्टि, स्थित, संहार, निग्रह, और अनुग्रह रूप में पांच कृत्यों को निरन्तर करता रहता है। [8]

शक्ति से यहां तात्पर्य है पांच प्रमुख शक्तियां चित्, आनंद, इच्छा ज्ञान और क्रिया। [9] स्वातंत्र्य का अर्थ है कि शिव इन शक्तियों के संकोच और विकास में पूर्णतः आत्मनिर्भर है, किसी भी प्रकार से किसी अन्य तत्त्व के अधीन नहीं है। [10] शक्तिमान् और स्वतंत्र शिव इन ऐश्वर्य की सामर्थ्य से अपने में पूर्वतः विद्यमान् जगत् को अपने ही द्वारा विस्फार करता है [11] अतः जगत् को और कुछ नहीं शिव की शक्ति का अथवा शिव का ही विस्फार है। [12] इस लोक का वैविध्य उसके स्वातंत्र्र्य के विविध आख्यान हैं। [13]

सत्य और चेतन शिव का आभास होने के कारण जगत् भी सत्य और चेतन है। [14] शिव और जगत् में स्वरूपगत पारमार्थिक भेद नहीं है किन्तु व्यावहारिक स्तर पर भेद है। [15] शिव पूर्णतया स्वातंत्र्य संकुचित है। [16] जगत् अपने प्रादुर्भाव और तिरोभाव के लिए शिव के अधीन है। किन्तु शिव किसी भी दृष्टि से जगत् के अधीन नहीं है। यही इस दर्शन का आभासवाद तथा अभेद में भेद दृष्टि का सिद्धान्त है। शिव तथा उससे (स्वेच्छया, स्वात्मभित्ति) आभासित के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए इस दर्शन के दार्शनिक अग्नि–विस्फुलिंग, [17] जल–वीचि बीजांकुर [18], चन्द्र–तत्प्रतिबिम्ब [19] दर्पण–नगर, स्वप्न, नट, योगी आदि के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जहां तक में दिखाई देने वाली चेतन अचेतन के भेद की समस्या है– उसका समाधान प्रत्यभिज्ञावादी आचार्यों ने बड़ी कुशलता से किया गया है। तदानुसार चेतन और अचेतन का भेद अवास्तविक है क्योंकि चेतन के बिना अचेतन की सत्ता ही नहीं हो सकती है। सम्पूर्ण जगत् चेतन ही है किन्तु जिस जागतिक तत्त्व में चैतन्य अधिक जागृत है अभिव्यक्त है उसे चेतन कह दिया जाता है तथा जिसमें चेतन अत्यन्त अनभिव्यक्त, संकुचित और पूर्णतः अप्रकाशित है उसे अचेतन कह दिया जाता है। इस मान्यता के अनुसार पशु, पक्षी, मनुष्य आदि अथवा (तथा) उसका आत्मतत्त्व तो चेतन है ही किन्तु अचेतन कहे जाने वाले पाषाण आदि भी चेतन ही हैं। [20] पाषाण आदि में चैतन्य संकुचित है और मनुष्य आदि में उसकी अभिव्यक्ति अपेक्षाकृति अधिक है। स्वरूप में संकोच और विकास का वस्तु का स्वरूपगत भेद नहीं है उसका सर्वतः भिन्न–भिन्न होना नहीं हैं और चेतन शिव से अभिन्न है इसी विचार प्रक्रिया से यह सूत्र प्रादुर्भूत हुआ कि जो सत् है वह चेतन है और जो अचेतन है वह असत् है। चेतन से चेतन के रहने और चेतन में चेतन के प्रादुर्भाव से चेतन में क्षोभ अथवा विकार की समस्या निःशेष हो जाती है। [21]

वस्तुतः प्रत्येक जीव में रहने वाला आत्मतत्त्व ही शिव तत्त्व परासंवित् शिव एवं शक्ति का अद्वय रूप है अर्थात शिव और शक्ति का समारस्य है शक्ति के बिना शिव शव है इकार शक्ति का वाचक है–इकारःशक्तिः और शिव के बिना शक्ति का अस्तित्व नहीं है। शिव तत्व पूर्ण अहंता का प्रतीक है। यह शिवयुग में इदंता का या किसी भी प्रकार के भेद का आभासन नहीं होता है। शिवतत्व प्रमाद के अंत में अहंता की अनुभूति के रूप में आवेश वास्तव में मुक्त पुरुष को शिवोऽहं की सहज प्रकृति है, इस स्तर में ज्ञान और क्रिया की अविभक्त अवस्था ही शिव तत्व है। आत्मवादी दर्शन के अनुसार परम आत्मा किं वा परमेश्वर कहा जा सकता है यह शिवतत्त्व विश्वोतीर्ण होने पर भी आपकी क्रियाशक्ति द्वारा शिव का अवभासित कर विश्वरूप हो जाता है। इस प्रकार शिवतत्त्व मूलतः समग्र पदार्थों एवं प्रमाताओं का मूलाधार है उसी से समग्र विश्व का प्रकाशन, आभासन या सम्मिलन हुआ है। विभिन्न आकारों से विभक्त यह विश्व सदा शिवतत्त्व में प्रतिबिम्बित रहता है शिवतत्त्व दशा का अनुभव करने वाला प्रमाता संभव प्रमाता है। जो शुद्ध 'अहं' की अनुभूति होती है। [22]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शिव ज्ञानरूप तथा क्रिया रूप दोनो हैं। वह कोरे ज्ञान से क्या जिसका कोई परिणाम कोई कार्य नहीं हो। ज्ञान समसामयिक होता है जब उसमे कर्तृत्व होता है। अतः यह परमशिव वेदांत के ब्रह्म एवं सांख्य के पुरुष से बिल्कुल भिन्न है, परमशिव चित्, आनंद, इच्छा, ज्ञान एवं शक्तियों से परिपूर्ण है। यह अपनी स्वातंत्र्य शक्ति से संपूर्ण जगत् में भाषित हो जाता है। वाक् और अर्थ की भाँति चन्द्र और चन्द्रिका के समान या वह्नि और उनकी दहकता के समान शिव एवं शक्ति का सहज सामरसस्य है। इसलिए शिव को प्रकाश–विमर्श कहा गया है। इसमें चैतन्य एवं सहज समन्वय का समावेश है। [23]

शिवतत्त्व परमशिव का वर्णन वैसा ही है जैसा कि षट्त्रिंशंतत्त्वसन्दोह में कहा गया है। जब (परमशिव) अपनी इच्छा से जगत् के सर्जन के लिए स्पंदमान होता है तो आद्य स्पंद उसके जानकारों द्वारा शिवतत्त्व कहलाता है। [24]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वात्मानं स्वविलासेन विश्वरूपेण भासयन्।
2. नित्योदितः कोऽपि देवो जयत्यात्मा परः शिवः।। आत्मविलास (द्वितीय प्रकरण), श्लोक 1
3. स्वातंत्र्य दर्पण 2/1
4. पूर्णताप्रत्यभिज्ञा 48
5. परमार्थसार, 1, 10, 11
6. चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका 1/5/13 और प्रत्यभिज्ञाहृदय 1
7. ध्यायेयं तं त्वां कथं स्वस्फुरत्ताम् रहस्यपंचदशिका 4,8
8. स्वातंत्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्य परमात्मनः। ई0प्र0का0 1/5/13
9. प्रकाशो हि विमर्शसारः विमर्शोऽपि प्रकाशसारः। भास्करी 1/1/3,
10. र0पं06/15, प्र0ह0 (मंगलाचरण), सूत्र 10/55, सर्वदर्शनसंग्रह में उद्धृत योगराजकारिका, पृ0 53
11. यस्य संविदि सर्वोऽयं भाववर्गोवभासते। प्रतिबिम्बितया

सोऽपि शिवः सर्वेश्वरो भवान्। – पू0प्र0

12. तत्र परमेश्वरः पंचाभिः शक्तिभिः निर्भरः। तन्त्रसार, आ0प्र063 और ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शनी भास्करी पृ0 181
13. ई0प्र0वि01/1/2 तं० 1/67–68, मा०वि०वा० 1/90 शि०दृ० 1/1
14. प० सा०,पृ० 92,96, स्व०चि08, प्र०ह०सू०२: ई०प्र०वि०वि०, पृ 5 शि०दृ० 2/9
15. स्वाद0द0 2/9
16. शि०दृ०व०1/2, ई0प्र0वि01/1/1, पा०सा० 25, प्र०ह०सू०वृ० ३
17. ई0प्र0का01/5/14 शि० दृ०व०,1/2, पृ०ह०, पृ० 29
18. तं0 8/184, शि0दृ03/36, शि0दृ0वृ0, पृ0 113
19. परा0गि0 241,25
20. प0सा0 7–8
21. चेतनाचेतनामपि स्वात्मानि निर्विशेषत्वम् ।20।। अज0प्र0सि0 1
22. जडस्य सत्तैव कथं चिद्व्यक्तिं बिना सिद्धा।।21।। स्फुरद्रूपता हि सत्ता स्फुरद्रूपता च प्रकाशमानता।। – शि0दृ0वि04/7
23. न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिः शिववर्जिता।।22।। तदात्मनयोर्नित्यं वहिह्लदाहकयोरिव।। प0सा0 (भूमिका), पृ0 13
24. भगवानः स्वतंत्र सर्वस्यात्मा सदा स्वतः सिद्धः। –स्वी0द02/29
25. स्वानंद निर्भराऽसौ स्वात्मोल्लासेच्छया समाविष्टः।।24।।
26. आनन्दत्वेन शिवः शक्तिश्चेच्छामयत्वतः कथितः।। वही, 3/1।